



ISSN: 3049-2017

IJMH 2026; 3(2): 01-06

© 2026 IJMH

www.themultijournal.com

Received: 19-02-2026

Accepted: 28-02-2026

Publish : 02-03-2026

**Dr. Shewli Chakraborty**  
Assistant Professor of Education,  
KKSU, Ramtek.

## श्रीमद्भगवद्गीता में अंतर्निहित मनोवैज्ञानिकतत्व

**Dr. Shewli Chakraborty**

**DOI:** <https://doi.org/10.5281/zenodo.18859790>

### सारांश-

श्रीमद्भगवद्गीता केवल धार्मिक या दार्शनिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के मनोविज्ञान का गहन विवेचन प्रस्तुत करने वाला अद्वितीय ग्रंथ है। महाभारत के युद्धभूमि में अर्जुन के विषाद से प्रारंभ हुई गीता मानव-मन की जटिलताओं, संघर्षों और उनके समाधान का मार्ग बताती है। इसमें आत्मा, मन, बुद्धि और अहंकार के आपसी संबंध का विश्लेषण मिलता है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों से तुलनीय है। गीता व्यक्ति को संयम सिखाती है जो सभी प्रकार के मानसिक रोंगों से सुरक्षित रखती है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और ध्यानयोग के माध्यम से मानसिक संतुलन, आत्मनियंत्रण तथा आत्मबोध की शिक्षा दी गई है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता, आत्म-संयम और नैतिक निर्णय की प्रक्रिया को समझने में गीता आज भी प्रासंगिक है। यह शोध आलेख गीता के श्लोकों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित करता है और यह दिखाता है कि गीता मानव-जीवन के लिए सभी कालों में विजित मनोवैज्ञानिक पथप्रदर्शिका है।

**मुख्यशब्द – श्रीमद्भगवद्गीता, मनोवैज्ञानिकतत्व**

### प्रस्तावना -

मानव मन, मानसिक प्रक्रियाओं और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है मनोविज्ञान (Psychology)। अंग्रेजी शब्द "Psychology" "Psyche" और "logo" इन दो शब्दों से मिलकर बना है। Psyche शब्द का अर्थ आत्मा है। Logos शब्द का अर्थ है विज्ञान। मनोविज्ञान में मन और व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इस विषय में मानवीय और अमानवीय व्यवहार का, चेतन और अचेतन अवस्था का, और विचार, भावनाएँ अवसाद जैसी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। प्राचीन भारत में मनोविज्ञान नाम का कोई अलग विषय उपलब्ध नहीं था। लेकिन मनोविज्ञान में चर्चा किए गए सभी विषय प्राचीन भारत के विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध हैं। इन सभी प्राचीन भारतीय ग्रंथों में से एक सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता है। भगवद्गीता महान महाकाव्य महाभारत का एक भाग है, जो हिंदू दर्शन में व्यापक रूप से लोकप्रिय पौराणिक कथा है। भीष्म पर्व का हिस्सा, गीता लगभग पूरी तरह से दो व्यक्तियों, भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच कुरुक्षेत्र के युद्ध मैदान में हुए संवाद का सार है। इसमें 18 अध्याय हैं, जिनमें लगभग 701 श्लोक हैं, जिनमें पहला "अर्जुन विषाद योग" और अंतिम "मोक्ष संन्यास योग" है। भगवद्गीता का पहला शब्द "धर्म"<sup>1</sup> है और आखिरी शब्द "मम"<sup>2</sup> है। "मम धर्म" – मेरे कर्तव्य, जिम्मेदारियाँ, अधिकार, नैतिकता, नैतिक आचरण, कार्य, गतिविधियाँ इत्यादि। पहला अध्याय, अर्जुन विषाद योग, अर्जुन के दुःख, चिंता, भय और अपराध बोध की अभिव्यक्ति का वर्णन करता है, जिसके कारण युद्ध के मैदान में शत्रु के शिविर में अपने सगे-संबंधियों को देखकर वे निष्क्रिय अवस्था में पहुँच जाते हैं। राज्य जीतने के लिए इस युद्ध को लड़ना उन सभी लोगों को मारना है जिनका अर्जुन आदर और प्रेम करते थे; यह किसी भी दृष्टि से पाप है। तीव्र दुःख और अपराध बोध से व्याकुल होकर अर्जुन अपने गांडीव धनुष त्याग देते हैं और सहायता और

### **Correspondence:**

**Dr. Shewli Chakraborty**  
Assistant Professor of Education,  
KKSU, Ramtek.

मार्गदर्शन के लिए अपने सारथी भगवान कृष्ण की ओर मुड़ते हैं। शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्<sup>3</sup> अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ, मेरा मार्गदर्शन कीजिए, मेरी सहायता कीजिए मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए रुचिकर तथ्य इन दो श्लोकों के बीच संवाद में निहित है:

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्बुद्धचेताः।**

**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥<sup>4</sup>**

अर्थात् "मैं कायरता (कार्पण्य) रूपी दोष से उपहत (घिरे) स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहग्रस्त मन वाला हो गया हूँ। अब मैं आपसे पूछता हूँ, कि जो मेरे लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी हो, वह बताइए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में आया हूँ, मुझे उपदेश दीजिये।

**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युता।**

**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तवा॥<sup>5</sup>**

अर्जुन कहते हैं: "हे अच्युत (कृष्ण)! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने ज्ञान प्राप्त कर ली है। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" द्वितीय अध्याय का तीसरा श्लोक<sup>6</sup> अर्जुन की असहाय अवस्था का वर्णन करता है, 18वें अध्याय का 73 श्लोक,<sup>7</sup> व्याकुलता, अवसाद और अपराधबोध के निवारण और आत्मविश्वास एवं स्फूर्ति के साथ कार्य करने की तत्परता को दर्शाता है। द्वितीय अध्याय के तीसरे श्लोक और 18 वें अध्याय के 73 वें श्लोक के बीच जो कुछ भी घटित हुआ, वह मनोविज्ञान के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए वैज्ञानिक जिज्ञासा का विषय है, क्योंकि इससे पीड़ा से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई अर्जुन को।

**अर्जुन की मनोविकृति का वर्णनात्मक विवरणः**

**चिंता –**

**सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।**

**वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥<sup>8</sup>**

**गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।**

**न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥<sup>9</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के इन दोनों श्लोक में अर्जुन अपनी शारीरिक और मानसिक व्याकुलता का वर्णन करते हैं: "हे कृष्ण! युद्ध की इच्छा रखने वाले स्वजनों को देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुख सूख रहा है, शरीर काँप रहा है और रोंगटे खड़े हो रहे हैं, मेरे हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है, मेरी त्वचा में जलन हो रही है, मैं खड़ा रहने में भी असमर्थ हूँ, और मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है। जो धनुष अजय था, अर्जुन का उसे थाम न पाना उनके मन के अवसाद को दर्शाता है। यह अत्यंत चिंता, भय और मोह से उत्पन्न शारीरिक लक्षण हैं, जो अर्जुन के मानसिक द्वंद्व को दर्शाते हैं। संबंधियों को देखकर अर्जुन के मन में युद्ध के दुष्परिणाम को लेकर चिंता और शोक उत्पन्न हो गया। अर्जुन का मन भ्रमित हो रहा है, वे रथ पर खड़े रहने में असमर्थ हैं और इस युद्ध को पाप मान रहे

हैं। यह स्थिति एक योद्धा की कायरता नहीं, बल्कि अत्यधिक भावुकता और अवसाद जनित शारीरिक और मानसिक शिथिलता है, जिसका वर्णन अर्जुन श्रीकृष्ण के सामने कर रहे हैं।

**अवसाद-**

**न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।**

**किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥<sup>10</sup>**

यह श्लोक युद्ध के मैदान में अपनों को खोने के भय से उत्पन्न अर्जुन के अवसाद (गहरी निराशा) को दर्शाता है। अर्जुन कृष्ण से कहते हैं कि मुझे न विजय चाहिए, न राज्य, और न ही सुख, क्योंकि अपनों के बिना यह सब व्यर्थ है। अर्जुन अपने सगे-संबंधियों को शत्रु के रूप में सामने देखकर मोह और शोक के कारण युद्ध न करने का निर्णय ले रहे हैं। अर्जुन के लिए, यदि उनके अपनों को मारना पड़े, तो राज्य या सुख भोगने का कोई महत्व नहीं है। यह अर्जुन की हताशा का चरम है, जहाँ वे विजय से ज्यादा अपनों के प्रति अपनी आसक्ति को प्रमुखता दे रहे हैं। यह श्लोक एक ऐसे मनःस्थिति को दिखाता है जहाँ कर्तव्य और मोह के संघर्ष में मोह हावी हो जाता है, जिससे अवसाद की स्थिति उत्पन्न होती है।

**अपराधबोधः**

**अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।**

**यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥<sup>11</sup>**

यह श्लोक अर्जुन के अपराधबोध को व्यक्त करता है। इस श्लोक में अर्जुन युद्धभूमि में अपनों को देखकर अत्यंत अपराधबोध और पश्चाताप से व्यथित होकर कहते हैं कि वे राज्य-सुख के लालच में अपने ही कुल का नाश करने जैसा पाप करने के लिए तैयार हो गए हैं। यह अधर्म के विरुद्ध अंतरात्मा की आवाज है। "अहो बत्" शब्द से अर्जुन यह दिखाता है कि उसे अपने कर्म पर गहरा खेद और आश्चर्य हो रहा है। यह अपराधबोध का पहला संकेत है। वह स्वयं मानता है कि - हम बहुत बड़ा पाप करने के लिए तैयार हो गए हैं। अपराधबोध में व्यक्ति अपने गलत कर्म को स्वीकार करता है। राज्य और सुख की लालसा ही इस पाप का कारण है। अपराधबोध में व्यक्ति यह समझता है कि उसका लोभ या स्वार्थ उसे गलत दिशा में ले गया। सरल शब्दों में, अपराधबोध तब व्यक्त होता है जब व्यक्ति अपने स्वार्थी निर्णय को गलत मानकर, उसके परिणामों पर खेद और ग्लानि महसूस करता है।

**मरने की इच्छाः**

**यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।**

**धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥<sup>12</sup>**

इस श्लोक में अर्जुन कहते हैं कि यदि शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र (कौरव) रणभूमि में मुझे निहत्थे और प्रतिशोध न लेने वाले (अप्रतिकार) को मार भी दें, तो भी वह मृत्यु मेरे लिए अधिक कल्याणकारी (क्षेमतरं) होगी। अर्जुन इतने विचलित हैं कि वे कहते हैं कि मैं लड़ने के बजाय मरना पसंद करूँगा। वे कौरवों पर आक्रमण करने के बजाय स्वयं निहत्थे होकर वध स्वीकार करने को तैयार हैं। यह श्लोक अर्जुन के मानसिक द्वंद्व और विषाद का चरम स्थिति

है। यहाँ अर्जुन की 'मृत्यु कामना' कोई नकारात्मक आत्महत्या की इच्छा नहीं है, बल्कि अपने ही गुरुओं और संबंधियों के खून से हाथ रंगने के भय से उपज एक गहरा वैराग्य और दुख है। अर्जुन अपने ही परिजनों को मारने के पाप से डरकर मृत्यु को स्वीकार कर रहे हैं। वे सोचते हैं कि यदि वे युद्ध से पीछे हट जाते हैं और कौरव उन्हें मार देते हैं, तो कम से कम कुल का संहार होने से तो बच जाएगा। यह स्थिति उनके मोह और स्वजनों के प्रति अत्यधिक लगाव को दर्शाती है, न कि वास्तव में आत्महत्या की कामना को, बल्कि युद्ध टालने की कोशिश को।

### **श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना - संज्ञानात्मक/तार्किक भावनात्मक दृष्टिकोण:**

संज्ञानात्मक/तार्किक भावनात्मक दृष्टिकोण मानसिक प्रक्रियाओं, विचारों और भावनाओं के बीच परस्पर क्रिया पर केंद्रित है। यह मानता है कि हमारे विचार ही भावनाओं और व्यवहार को निर्धारित करते हैं, न कि परिस्थितियाँ। इस दृष्टिकोण में तर्कसंगत सोच (Cognitive) के माध्यम से विकृत, अतार्किक या नकारात्मक भावनाओं को संशोधित करके, तनाव कम करने और बेहतर मानसिक स्वास्थ्य के लिए व्यवहार में सुधार करने का प्रयास किया जाता है। संक्षेप में, यह दृष्टिकोण 'सोच को बदलकर भावनाओं को नियंत्रित' करने पर जोर देता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस उदास स्थिति से बाहर निकालने के लिए आधुनिक मनोवैज्ञानिक भाषा में संज्ञानात्मक तथा तार्किक भावनात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं। जिसका उदाहरण हमें श्रीमद्भगवद्गीता के इन श्लोकों में मिलता है -

**अशोच्या-नन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।**

**गतासू- नगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।<sup>13</sup>**

इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम उनके लिए शोक कर रहे हो जो शोक के पात्र नहीं हैं, फिर भी ज्ञान की बातें करते हो। अर्जुन बौद्धिक रूप से जानते हैं कि आत्मा अमर है, लेकिन भावनात्मक रूप से वे युद्ध के परिणामों (रिश्तेदारों की मृत्यु) से दुखी हैं। यह 'ज्ञान' और 'भावना' के बीच का टकराव है। इसे मनोविज्ञान के भाषा में संज्ञानात्मक असंगति कहते हैं। कृष्ण अर्जुन को 'पंडित' (विद्वान) की तरह सोचने का निर्देश देते हैं। पंडित व्यक्ति न तो जीवितों के लिए शोक करते हैं और न ही मृतों के लिए, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु के पीछे की नश्वरता को जानते हैं। इस निर्देश के माध्यम से श्रीकृष्ण अर्जुन के नजरीया को परिवर्तित करने की कोशिश करते हैं। इसे मनोविज्ञान के भाषा में Cognitive Restructuring कहते हैं। संक्षेप में, यह श्लोक भावनात्मक रूप से परिपक्व होने और दृष्टिकोण (Perspective) को बदलने के लिए संज्ञानात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करता है। वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।<sup>14</sup>

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक मृत्यु को एक अंत नहीं, बल्कि आत्मा द्वारा पुराने शरीर को बदलकर नया धारण करने की एक प्राकृतिक प्रक्रिया (पुनर्जन्म) बताता है। जैसे पुराने कपड़े त्यागकर नए पहने जाते हैं, वैसे ही आत्मा जीर्ण शरीर छोड़ती है। यह जीवन का एक तर्कसंगत, परिवर्तनशील हिस्सा है। यह श्लोक प्रियजनों के निधन पर अत्यधिक शोक को व्यर्थ बताता है, क्योंकि आत्मा केवल शरीर बदल रही है, न कि समाप्त हो रही है। यह मृत्यु के डर को कम करता है और जीवन को एक निरंतर यात्रा के रूप में देखने की भावना विकसित करता है, जहाँ शरीर की नश्वरता के कारण मृत्यु अपरिहार्य है। यह विचार "नवीनता" की ओर जाने की सकारात्मक चिन्तन लाता है, जो पुराने को छोड़ने के दुःख को कम करता है। संक्षेप में, यह ज्ञान अर्जुन और सामान्य मनुष्य को यह समझने में मदद करता है कि जो कुछ भी शरीर के साथ होता है, वह एक अस्थायी प्रक्रिया है, इसलिए उसे अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**

**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।<sup>15</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक आत्मा की अमरता और अचलता को रेखांकित करता है, जिसमें बताया गया है कि आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल इसे आर्द्र कर सकता है और न वायु शुष्क कर सकती है। यह श्लोक तार्किक रूप से शरीर (नश्वर) और आत्मा (अविनाशी) के बीच स्पष्ट अंतर करता है। यह सिद्ध करता है कि आत्मा कोई भौतिक वस्तु नहीं है, क्योंकि जो वस्तु अग्नि, जल, वायु और अस्त्रों से प्रभावित होती है, वह भौतिक है। आत्मा निर्गुण और निराकार है, यह इन तत्वों से परे है। यह श्लोक भावनात्मक रूप से मृत्यु के सदमे को भी शांत करता है, यह आश्वासन देकर कि प्रियजन की आत्मा अमर है और नष्ट नहीं हुई है। क्योंकि मृत्यु केवल शरीर का त्याग है, तो आत्मा का अस्तित्व बना रहता है, जो तार्किक रूप से मृत्यु के भय को कम करता है। यह शरीर और आत्मा के बीच अंतर करते हुए, नश्वरता से परे सनातन अस्तित्व का संदेश देता है। जब व्यक्ति यह समझता है कि उसका असली स्वरूप आत्मा अजर-अमर है, तो उसे शरीर छोड़ने या मृत्यु का डर नहीं रहता, वह निर्भय हो जाता है। यह हमें नश्वर चीजों के प्रति आसक्ति छोड़ने और अनश्वर, शाश्वत ईश्वर/आत्मा में शांति खोजने के लिए प्रेरित करता है। संक्षेप में, यह श्लोक बौद्धिक रूप से शरीर की नश्वरता को स्वीकार करने और भावनात्मक रूप से आत्मा की अमरता में विश्वास रखकर मानसिक शांति पाने का मार्ग दिखाता है।

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च**

**तस्माद् अपरिहार्ये रथे न त्वं सोचितुमर्हसि।<sup>16</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक जन्म और मृत्यु के अकाट्य सत्य को रेखांकित करता है। यह जीवन के अनित्य स्वभाव को दर्शाते हुए शोक न करने और अपने कर्तव्य का पालन करने का संदेश देता है। इस श्लोक का विश्लेषण तीन प्रमुख दृष्टिकोणों से किया जा सकता है:

**संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (Cognitive Perspective):** यह बुद्धि को सत्य की स्वीकृति सिखाता है। जो पैदा हुआ है, उसका मरना और जो मरा है, उसका फिर से जन्म लेना निश्चित है। यह एक सार्वभौमिक नियम है, जिसके बारे में तर्क करना व्यर्थ है।

**तार्किक दृष्टिकोण (Logical Perspective):** मृत्यु और पुनर्जन्म अटल सत्य (अपरिहार्य) हैं, जिन्हें टाला नहीं जा सकता। जब कोई घटना अपरिहार्य हो, तो उस पर शोक करना अतार्किक है क्योंकि यह समय और ऊर्जा की बर्बादी है।

**भावनात्मक दृष्टिकोण (Emotional Perspective):** यह श्लोक व्यक्तिगत मोह, भय और शोक को त्यागकर भावनात्मक संतुलन (स्थितप्रज्ञता) की ओर ले जाता है। यह सिखाता है कि जीवन के प्राकृतिक चक्र को समझकर व्यक्ति को कर्तव्य पथ पर अडिग रहना चाहिए।

यह श्लोक भावनात्मक रूप से परिपक्व होने और जीवन की वास्तविकता को समझने के लिए तर्क और विवेक का उपयोग करने का मार्ग दिखाता है।

**अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।**

**ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥<sup>17</sup>**

इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यदि तुम इस धर्मयुद्ध को नहीं लड़ोगे, तो अपने कर्तव्य और कीर्ति को खोकर पाप के भागी बनोगे। एक योद्धा के लिए युद्ध करना उसका कर्म है; इसे न करना अपने मूल स्वभाव और नियत कर्तव्य को त्यागना है। युद्ध से भागने से व्यक्ति कीर्ति (यश) खो देता है, क्योंकि समाज इसे डर के रूप में देखता है। कृष्ण अर्जुन को तर्क देते हैं कि कर्म से पलायन केवल और अधिक मानसिक संघर्ष और पाप का कारण बनेगा, न कि सुख का। तार्किक रूप से, यह श्लोक कर्महीनता से स्वधर्म की उपेक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि की चेतावनी है, जो अंततः पाप या अनर्थ की ओर ले जाती है। यह श्लोक आत्म-प्राप्ति और धर्म के मार्ग पर सुदृढ़ रहने का आह्वान करता है, न कि परिणामों से डरकर कर्तव्य से विमुख होने का।

**अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।**

**संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥<sup>18</sup>**

इस श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन तुम आज युद्ध नहीं करोगे तो भावी काल में सब लोग तुम्हारी इस अपकीर्ति की चर्चा करेंगे, और सम्मानित व्यक्ति के लिए अपयश मरण से भी अधिक दुःख है। मृत्यु क्षणिक है, लेकिन अपकीर्ति का असर दीर्घकालिक होता है।

प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए, लोग उसे "वीर" के बजाय "कायर" के रूप में याद रखेंगे, ये मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक है। यदि कोई व्यक्ति उच्च स्थिति में है (जैसे अर्जुन) और अपना धर्म का पालन नहीं (कर्तव्य) करता है, तो उसे बाद में तीव्र मानसिक वेदना का अनुभव होता है, जो मृत्यु से अधिक पीड़ादायक है। सम्मानित व्यक्ति के लिए अपकीर्ति एक ऐसा घाव है जिसके माध्यम से उस व्यक्ति का, आत्मविश्वास, स्वाभिमान, मनोबल, धीरे धीरे क्षीण होता जाता है। मानसिक रूप से ऐसे व्यक्ति का मृत्यु हो जाता है। इसलिए यह मानसिक मृत्यु से बेहतर है कि सही राह पर रहकर प्राण त्यागे जाएं। यह श्लोक संज्ञानात्मक रूप से स्थापित करता है कि "स्वाभिमान" (Self-esteem) का मूल्य "जीवन" से अधिक है।

### **निष्काम कर्म द्वारा अवसाद से मुक्ति**

श्रीमद्भगवद्गीता में एक ऐसा सिद्धांत है जिसे कई महान विद्वानों द्वारा स्विकृती और प्रशंसा मिली है, और वह है कर्म पर बल देना। कर्म के फल के प्रति मोह के बिना कर्म करना और कर्तव्यों का पालन करना भगवद्गीता की शिक्षाओं में एक महत्वपूर्ण बिंदु के रूप में उभरता है। गीता में कर्म और त्याग का मूल तत्व कर्मयोग है, जिसके अनुसार मनुष्य को फल की इच्छा का त्याग करके कर्तव्य-कर्म करने चाहिए। कर्म अनिवार्य है, लेकिन बन्धन से मुक्ति कर्मफल का त्याग करके ही मिलती है, न कि कर्म छोड़कर। भगवान कृष्ण ने बताया है कि फल की चिंता के बिना निस्वार्थ भाव से किया गया कार्य ही सच्चा त्याग और योग है।<sup>19</sup>

### **गीता में कर्म और त्याग का सार**

- **कर्म का अनिवार्य सिद्धांत :** कर्म का त्याग असंभव है;<sup>20</sup> निष्क्रिय रहने से कर्म करना श्रेष्ठ है।<sup>21</sup> हर व्यक्ति को प्रकृति के अनुसार कर्म करना ही पड़ता है, इसलिए कर्तव्य-कर्म से पीछे नहीं हटना चाहिए।
- **त्याग का सही अर्थ (Renunciation):** गीता के अनुसार, असली त्याग का मतलब<sup>22</sup> काम छोड़ना नहीं, बल्कि कर्मों के फल की इच्छा का त्याग करना है। इसे 'निष्काम कर्म' कहा गया है।
- **कर्म में अकर्म (Action in Inaction):** सबसे बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो कर्म करते हुए भी अनासक्त रहता है, यानी कर्म करने के बावजूद 'मैं करता हूँ' का अहंकार नहीं रखता और फल का मोह नहीं करता<sup>23</sup>।
- **तीन प्रकार के त्याग (Types of Renunciation):** गीता में सात्त्विक<sup>24</sup>, राजसिक<sup>25</sup> और तामसिक<sup>26</sup> त्याग की चर्चा है। सात्त्विक त्याग सबसे श्रेष्ठ है, जिसमें कर्तव्य समझकर फल की इच्छा के बिना कर्म किया जाता है।

- **समर्पण (Surrender):** जब हम फल की अपेक्षा न करके कर्म को ईश्वर को समर्पित कर देते हैं, तो वह कर्म हमें नहीं बाँधता, बल्कि मुक्ति का मार्ग बनता है।<sup>27</sup>

गीता का संदेश है कि जीवन में संघर्ष अनिवार्य है<sup>28</sup>, लेकिन फल की आसक्ति ही दुखों का कारण है। अतः, कर्म करते हुए भी मन में 'कर्तापन' का त्याग करके, सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर देना ही सच्चा कर्म-संन्यास (त्याग) है।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥<sup>29</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक, अवसाद (Depression), चिंता और निराशा से मुक्ति का सर्वोत्तम मानसिक सूत्र है। यह श्लोक निष्काम कर्मयोग का मूल मंत्र है, जो सिखाता है कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्तव्य (कर्म) करने में है, उसके फल (परिणाम) पर नहीं। कर्मफल की इच्छा से मुक्त होकर, परिणाम की चिंता किए बिना अपना सर्वश्रेष्ठ कर्म करना ही सच्चा ज्ञान और त्याग है, जो फल के प्रति आसक्ति और निष्क्रियता दोनों को त्यागने पर जोर देता है। यह सिखाता है कि परिणाम की चिंता छोड़कर अपना शत-प्रतिशत प्रयास वर्तमान में करें, जिससे भविष्य की चिंता और असफलता का भय दूर होता है।

**अवसाद से सुरक्षा -**

- **परिणाम की चिंता से मुक्ति:** जब हम फल की अपेक्षा छोड़ देते हैं, तो असफलता या उम्मीद से कम परिणाम मिलने पर होने वाला अवसाद स्वतः कम हो जाता है।
- **अकर्मण्यता से बचाव:** श्लोक के दूसरे भाग (मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि) में निष्क्रियता (कर्म न करने) से दूर रहने की सलाह है, जो अवसाद की एक प्रमुख स्थिति है। कर्म ही जीवन है।
- **वर्तमान में जीना:** यह कर्म पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहता है, न कि अतीत के पछतावे या भविष्य की चिंता पर, जिससे मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है।
- **स्वार्थहीनता:** व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा न रखकर, कर्तव्य समझकर काम करने से मानसिक तनाव कम होता है और संतुष्टि मिलती है।

यह श्लोक निष्कामकर्म का मूलमंत्र है, जो हमें कर्म करने में सक्रिय रखकर फल की आसक्ति से मुक्त कराता है, जिससे जीवन में अवसाद या निराशा की कोई जगह नहीं बचती।

**मानवतावादी विचारधारा:** मानवतावादी विचारधारा में व्यक्ति की आत्मशक्ति और क्षमताओं पर जोर दिया जाता है, और यह बताती है कि व्यक्ति अपने कार्यों, विकास या अन्य किसी भी चीज़ के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होते हैं। "आप अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करते हैं।"

**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।**

**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥<sup>30</sup>**

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक आत्म-विकास और आत्मनिर्भरता का सर्वोच्च संदेश है। इसका अर्थ है कि मनुष्य को स्वयं के प्रयास से

अपनी आत्मा को ऊँचा उठाना चाहिए, न कि उसे पतन में डालना चाहिए, क्योंकि मनुष्य खुद ही अपना मित्र और खुद ही अपना शत्रु है। यह श्लोक मानता है कि हमारी उन्नति या अवनति हमारे मन और कर्मों पर निर्भर है, किसी बाहरी शक्ति पर नहीं।

**मानवतावादी विचारधारा के संदर्भ में मुख्य बातें:**

- **आत्म-उद्धार (Self-Empowerment):** यह श्लोक सिखाता है कि हर व्यक्ति में इतनी शक्ति है कि वह अपने दुखों से बाहर आ सके, जो मानवतावादी दर्शन के अनुसार व्यक्तिगत स्वतंत्रता और क्षमता का सम्मान है।
- **आत्म-जिम्मेदारी (Self-Responsibility):** यह हमें यह संदेश देता है कि अपनी सफलता या असफलता के लिए हम खुद जिम्मेदार हैं, न कि भाग्य या परिस्थितियाँ।
- **मन ही मित्र/शत्रु:** अगर हमारा मन नियंत्रित और सकारात्मक है तो वह मित्र है, और अगर नकारात्मक (लोभ, क्रोध, आलस्य से भरा) है तो वह शत्रु है।
- **सकारात्मक दृष्टिकोण (Positive Outlook):** यह श्लोक अवसाद (depression) से बाहर आने का मार्ग दिखाता है, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

गीता में मानवतावादी विचारधारा का मूल आधार **निष्काम कर्म** फल की इच्छा के बिना कर्म, समानता (आत्मवत सर्वभूतेषु - सभी प्राणियों को समान मानना), और लोककल्याण (सर्वभूतहिते रताः) है। यह मनुष्य को स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रेम, करुणा और सेवा के माध्यम से एक न्यायपूर्ण और सहिष्णु समाज के निर्माण का संदेश देती है।

**निष्कर्ष -**

श्रीमद्भगवद् गीता सिर्फ एक धार्मिकग्रन्थ नहीं है, यह एक दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ है। जीवन की हर समस्या का मसाधान इस ग्रन्थ में मिल सकता है। इस ग्रन्थ में हमारी प्रतिनियत जीवन की दुःख, अवसाद, द्वन्द्व इत्यादि से छुटकारा पाने का उपाय है, जिसके कुछ विषयों को इस शोधपत्र में बताने की प्रयास की गई है।

**यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः**

**तत्रश्री विजयो भूति ध्रुव नीतिर्मतिर्ममा।<sup>31</sup>**

भगवद्गीता के आखिरी श्लोक में भगवान कृष्ण ने प्रत्येक मानव को यह वार्ता देने की कोशिश की है कि वे अर्जुन के आदर्शों को अनुसरण कर के चलें और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्री कृष्णके प्रति भक्ति, प्रेम और आस्था রাখते हुए चले। फिर ज़िंदगी में कितनी भी शारिरीक, मानसिक या बाहरी संकट आएँ, वह उसमें विजय प्राप्त कर सकता है। जैसे कि भगवान श्रीकृष्ण हम सबको ग्रह आश्वासन दे रहे हैं की वे सदा सर्वदा हमारे साथ हैं, अतः भगवान कृष्ण को आपना सखा मानकर निर्डर होकर आपना कर्तव्य करते रहे। ओम् नमो भगवते वासुदेवाय।

**सन्दर्भग्रन्थसूची -**

1. भगवद् गीता, गोरखपुर प्रेस।

- 2.वर्मा वी.के., घोष ए. भारतीय मनोचिकित्सकों द्वारा अपनाई जाने वाली मनोचिकित्सा। इंडियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री। 1976;18:177- 86. [ गूगल स्कॉलर ]
- 3.नेकी जेएस. भारत में मनोचिकित्सा: अतीत, वर्तमान और भविष्य। एम जे साइकोथेर. 1975;29:92- 100. doi: 10.1176/appi.psychotherapy.1975.29.1.92. [ DOI ] [ PubMed ] [ Google Scholar ]
- 4.सूर्या एनसी, जयराम एसएस। भारतीय परिवेश में मनोचिकित्सा के अभ्यास में कुछ बुनियादी विचार। इंडियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री। 1964;6:153- 6। [ पीएमसी निःशुल्क लेख ] [ पबमेड ] [ गूगल स्कॉलर ]
- 5.बलोधी जेपी, संपादक। वेदों से इतिहास और पुराणों का संबंध: हमारी वैदिक विरासत। बेंगलोर: चिन्मयानंद मिशन; 1984. पृष्ठ 64-68. [ गूगल स्कॉलर ]
- 6.राव ए वेंकोबा, पार्वतीदेवी एस. भगवद्-गीता शरीर और मन का वर्णन करती है। इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री मेडिसिन। 1974;19:34- 44. [ गूगल स्कॉलर ]
- 7.रामचंद्रराव एस.के. भारतीय चिंतन में तनाव की अवधारणा (गीता और आयुर्वेद में व्यावहारिक भागीदारी)। एनआईएमएएन.जे. 1983;1:123- 31. [ गूगल स्कॉलर ]
- 8.सत्यानंद डी. हिंदू धर्म की गीता का मनोविज्ञान। लंदन: ऑक्सफोर्ड और आईबीएच; 1972. [ गूगल स्कॉलर ]
- 9.जेस्टे डीवी, वाहिया आईवी। प्राचीन भारतीय साहित्य में ज्ञान की अवधारणा की आधुनिक दृष्टिकोणों से तुलना: भगवद गीता पर केंद्रित। मनोचिकित्सा। 2008;71:197- 209। doi: 10.1521/psyc.2008.71.3.197। [ DOI ] [ PMC निःशुल्क लेख ] [ PubMed ] [ Google Scholar ]
- 10.राव ए.वी. भारतीय दर्शन में मन। इंडियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री। 2002;44:315- 25. [ पीएमसी निःशुल्क लेख ] [ पबमेड ] [ गूगल स्कॉलर ]
- 11.हेगडे एस. भगवद गीता और मानसिक स्वास्थ्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी: सम्मेलन की कार्यवाही। एशियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री। 2009;1:60. doi:10.1016/j.ajp.2008.09.011. [ DOI ] [ PubMed ] [ Google Scholar ]
- 12.गोविंदास्वामी एम.वी. आत्मसमर्पण-आत्मसमर्पण नहीं। लेनदेन। 1959;2:i- x. [ गूगल स्कॉलर ]
- 13.बलोधी जेपी, केशवन एमएस। भगवद गीता और मनोचिकित्सा। एशियाई जे मनोरोग. 2011;4:300-2. doi: 10.1016/j.ajp.2011.10.005. [ डीओआई ] [ पबमेड ] [ गूगल स्कॉलर ]
- 14.गंगाधर बी.एन. मानसिक स्वास्थ्य देखभाल और संवर्धन पर भारतीय ग्रंथ। एशियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री। 2011;4:303. doi: 10.1016/j.ajp.2011.11.001. [ DOI ] [ PubMed ] [ Google Scholar ]
- 15.स्वामी चिन्मयानंद, पवित्र गीता। केंद्रीय चिन्मय मिशन ट्रस्ट। 2002 [ गूगल स्कॉलर ]
- 16.स्वामी दयानन्द, भगवद गीता। 1978 [ गूगल स्कॉलर ]
- 17.चलम गुडिपति वेंकट, भगवद गीता। 1966 [ गूगल स्कॉलर ]
- 18.कार्ल रोजर्स सी. कार्ल रोजर्स व्यक्तिगत शक्ति पर। 1977 [ गूगल स्कॉलर ]
- संदर्भ**
- धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।  
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥1.1 ॥
  - यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।  
तत्र श्रीविजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥18.78॥
  - कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।  
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मेशिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां  
प्रपन्नम्॥2.7॥
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2, श्लोक 7
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 18, श्लोक 73
  - क्लेब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते  
क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्तवोतिष्ठ परंतप॥2.3
  - नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।  
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥18.73
  - श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 1 श्लोक 29
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 1 श्लोक 30
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 1 श्लोक 32
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 1 श्लोक 45
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 1 श्लोक 46
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 11
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 22
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 23
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 27
  - मद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 33
  - श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 34
  - योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।  
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥2.48
  - न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।  
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥3.5॥
  - नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।  
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥3.8॥
  - न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।  
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥18.11॥
  - कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।  
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥4.18॥
  - कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।  
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥18.9॥
  - दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्यजेत् ।  
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥18.8॥
  - नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।  
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥18. 7॥
  - सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।  
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥18.66॥
  - हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।  
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥2.37॥
  - श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 47
  - श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 6 श्लोक 5
  - श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 18 श्लोक 78